संसार है ईश्वर का घर
(ईशावास्योपनिषद्)

प्रभुदयाल मिश्र

ईशा वास्यमिदं सर्वंयत्किंच जगत्यां जगत्

तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।

ईश्वर का है घर
यह संसार,
सब कुछ
यह जगत जंगम
छोड़कर, ,कर त्याग
अर्पित कर,
करो तुम उपभोग,
लोभ मत करना
भला यह धन
कहां, किसका है ! 1।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेच्छतं समा

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।

इस तरह करते हुए ही कर्म
वर्ष सौ जीना
अभीप्सा रख
मार्ग यह केवल
नहीं है अन्य पथ
कर्म में संलिप्तता से दूर
रहने के लिए
नर को । 2।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृतः

तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।

घने, गहरे, अंध–
असुर लोकों में
मृत्यु के पश्चात्
जाते वे सभी
'आत्म' हन्ता जो हुआ करते । 3।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्

तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ।

कभी न चलता
तथा चलता कहीं वह तीव्रतर
मन से, अगम
वह एक पहुंचा कहीं पहले ही वहां
दुर्गम सदा जो देवताओं को
वायु, अपनी चेतना से
प्राण, वह भरता
सभी की देह में । 4।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके

तदनन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।

वह चला करता,
नहीं चलता,
बहुत है दूर
फिर भी पास है
मध्य, भीतर सभी के
बाहर यथावत है । 5।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगप्सते ।

सभी भूतों, प्राणियों को
स्वयं में,
स्वयं को जो सभी भूतों प्राणियों में
देखता
वह घृणा किससे
करेगा ? । 6।

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः

तत्र को मोह : क : शोक एकत्वमनुपश्यतः ।

मोह अथवा शोक
उसको क्यों, कहां
एक को सब में रहा
जो देख है ? । 7।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्

व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।

सब जगह है
धवल वह अशरीर
अक्षत
शिराओं, धमनियों से शून्य
वह निष्पाप, निर्मल
मनीषी, कवि
श्रेष्ठतम सबसे
स्वयं ही उत्पन्न
सब कुछ जो जहां जैसा
बनाया है उसी ने
सदा से
सबके लिए आगे । 8।

अंधं तमः प्रविशन्ति

ये ऽविद्यामुपासते

ततो भूय इव ते तमः य उ विद्यायां रतः

घने गहरे अंध–तम जाते
उपासक अविद्या के
और विद्या में हुए रत भी
गहनतर– अंधकार
जाते हैं । 9।

अन्यदेवाहुर्विद्ययां अन्यदाहुरविद्यया

इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।

अलग हैं परिणाम
विद्या के, अविद्या के
सुना यह हमने
सुधीजन से
जिन्होंने जानकर इसको कहा था
हित हमारे
पूर्व में । 10।

विद्यां चाविद्यांच यस्तदवेदोभयं सह

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ।

जानता विद्या, अविद्या जो

स्वयं ही संपूर्ण
पार ले जाती अविद्या
मृत्यु के उसको
और विद्या वहां पहुंचाती
जहां अमृतत्व है । 11।

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये असंभूतिं उपासते
ततो भूय इव ते तमः य उ संभूत्यां रतः ।
घने, गहरे, अंध–तम जाते
सदा संसार में जो हैं
किन्तु गहरे, और गहरे
अंध में पहुंचे
अप्रकट में रत सदा जो हैं । 12।

अन्यदेवाहुः संभवाद् अन्यदाहुरसंभवात्
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ।
अलग हैं परिणाम
संभव के, असंभव के
सुना यह हमने सुधीजन से
जिन्होंने हमारे हित में
इसे जाना, कहा था । 13।

संभूतिं च विनाशं च यस्तद् वेदोभयं सह
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्याऽमृतमश्नुते ।14।
जानता संसार,
उसका अंत
स्वयं जो संपूर्ण
पार उसको जगत ले जाता
स्वयं ही मृत्यु के,
अमृत में उसकी प्रतिष्ठा
प्रलय के आगे । 14।

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यपिहितं मुखम्
तत् त्वं पूषन्नपावृणु, सत्यधर्माय दृष्टये ।
है ढंका मुख सत्य का
स्वर्णमय भूषण

खेाल दो तुम स्वयं
अब पूषन्
सत्य के संधानकर्ता के लिए इसको। 15।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य
प्राजापत्य व्यूह रश्मीन समूह ।
तजो यत् ते रूपं कल्याण–तमं , तत् ते पश्यामि,
योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ।
खींच लो दुर्जेय रश्मि–समूह
पूषन्, यम
सूर्य एकाकी, प्रजापति
देंख मैं जिससे सकूं
कल्याणमय उस पुरुष को
जो स्वयं मैं हूं । 16

वायु रनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्

ऊं क्रतो स्मर,कृतं स्मर, क्रतो स्मर,कृतं स्मर ।
हो विसर्जित प्राण
उस चैतन्य में
देह भस्मीभूत हो जाए
स्मरण कर कर्ता, सभी कृत कार्य
स्मरण कर कर्ता, सभी कृत कार्य । 17।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्

विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो

भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम
ले चलो सन्मार्ग पर, ऊपर
तुम हमें हे अग्नि !
है तुम्हें सब ज्ञात, सब विज्ञात
कुटिल कर्मों को करो अब भस्म
अर्चना, बन्दन तुम्हारा हम
कर रहे हैं नित्य
बारंबार । 18।